'जितना भी धीमे क्यों न चलो, स्कूल तो अंत में आ ही जाता है'

शिव कुमार गांधी

परिचयः

चित्रकार, देश-विदेश में अनेक चित्र प्रदर्शनियां, बच्चों के लिए रूम टू रीड से 'मेरी किताब' प्रकाशित। बच्चों एवं किशोरों के साथ कला पर कार्य, अनेक पोस्टर एवं कविताएं प्रकाशित।

संपर्कः

70/179, मध्यम मार्ग,
मानसरोवर, जयपुर - 302020

यह टिप्पणी 'तूलिका' द्वारा बच्चों के लिए 2004-2005 में प्रकाशित लगभग तीस पुस्तकों के बारे में है। इन पुस्तकों में अधिकांश हिन्दी-इंगलिश दोनों भाषाओं में साथ-साथ हैं। हिन्दी में लिखी मूल पुस्तकें कम हैं, इंगलिश व अन्य भाषा से अनुदित ज्यादा हैं।

1

इन पुस्तकों में एक है 'बीज' दीपा बलसावर की, दिलचस्प पुस्तक है- एक छोटी लड़की रस्सी कूद रही है- कि उसे एक बीज मिलता है जिसे वह एक छोटे गमले मे लगा देती है। गमले मे पानी डालती है, धूप दिखाती है। फिर उसके प्रश्न प्रारम्भ होते हैं। परिवार के अलग- अलग सदस्यों से पूछती है। क्या यह पेड़ है ? क्या यह झाड़ी है ? क्या इसमें फूल होंगे ? फल होंगे ? ऊंचा होगा ? छोटा रहेगा ? आदि जैसे प्रश्न हैं। अंत में लड़की न प्रश्न पूछती है न उनके उत्तर। बस कहती है 'कोई फर्क नहीं पड़ता'। वह बीज से निकली गमले में दिख रहीं कोंपलों के साथ खुश है। पुस्तक को चित्रित भी सुन्दर किया गया है। चित्रों को देखना अच्छा भी लगता है। एक सरल, पर लड़की के अनुभव के स्तर पर विस्तार बनाते हुए विवरण और प्रत्येक वाक्य के लिए समुचित स्पेस इस पुस्तक को सुन्दर बनाता है।

तीन-चार साल के बच्चों के लिए कुछ इसी प्रकार की पुस्तकें और भी है। संध्या राव (चित्र- अशोक राजगोपालन) की 'नानी की आंखें', राधिका मेनन (चित्र-ट्राटस्की मरुदु) की 'लकीर और गोल', साक्षी जैन की 'मैं कौन हूं', शैफाली जैन की 'दस' या सुबीर शुक्ला की 'राधा ने गोला ढूंढ़ा'।

इन पुस्तकों में 'नानी की आंखें' व 'बीज' किताबें ही अपने कथ्य में सुन्दर व रोचक हैं, बाकी तो कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों की वर्कशीट लगती हैं। क्योंकि अवलोकन करना व उसको दर्ज करना सिखाने का आग्रह इनमें अधिक है न कि बच्चे को स्वतंत्र रूप से 'देखने' का आनन्द लेने का। किताब 'दस' अपने चित्रों व अन्त तक बने रहते कौतुहल की वजह से रोचक है। अगर गणित का आग्रह न होता तो यह एक बेहतरीन चित्र पुस्तक होती। इस किताब के पहले पृष्ठ में एक बच्चा कौतुक भरा चेहरा लिए आता है, दूसरे पृष्ठ पर दूसरा बच्चा। इस तरह किताब के अंत होते-होते दस बच्चे कौतुक से कुछ देखते हुए आते हैं और यह कौतुहल क्या है? वह अंतिम पृष्ठ पर पता चलता है कि यह बच्चे रस्सी पर चल रही गाय के करतब को देखने के लिए इकट्ठा हुए हैं।

साक्षी जैन की किताब 'मैं कौन हूं'- 'मैं' की मिली-जुली तस्वीर पेश करती है। पुस्तक के कवर पर एक सोचते हुए बच्चे का चित्र है। पहले ही पृष्ठ से वह कहता/कहती है। मैं एक इंसान हूं (वह पशु-पक्षियों से घिरा हुआ है।)। मैं एक बच्चा हूं (पीछे माता- पिता खड़े हैं।)। मैं एक लड़का-लड़की हूं (यौन अंग को कपड़े से ढक रखा है।)। इसी तरह से पोता-नाती, भाई, दोस्त, स्कूली छात्र के रूप में वह

अपने-आपको दर्शाता है। प्रश्न यह है कि क्या एक छोटे बच्चे को अपनी पहचान की इस तरह से आवश्यकता होती है और क्या बच्चा इस तरह से अपने बारे में सोचता है ? यह पहचान मुझे लगता है कि लेखिका की अपने मन के 'बच्चे की पहचान' ज्यादा है। जबकि बच्चा कुछ करता हुआ, चीजों को प्रारम्भिक स्तर से जानता हुआ, दुनिया से अपना रिश्ता बनाता है। जानवरों से घिरे बच्चे का अपने आप को इंसान कहते हुए देखना अजीब लगता है। जबकि चीजों से अपने रिश्ते को 'विशेषणों' के साथ परिभाषित करते हुए जैसे कि 'मुझे स्कूल जाना कम पंसद है' इस तरह के रिश्ते बच्चे-व्यक्ति की दुनिया में पहचान व अन्य दुनियावी चीजों के साथ उनके रिश्तों को बताते हैं। इस दृष्टि से 'नानी की आंखें' दिलचस्प है। यह एक छोटे बच्चे के अपनी नानी के साथ रिश्ते को कहती है।

2

संध्या राव (चित्र-ट्रॉटस्की मरूदु) की 'देखो चांद' अपने चित्रों की वजह से बेहद सुन्दर पुस्तक है। चित्रों के साथ जो टेक्स्ट संध्या राव का है वह चांद के इतने रूप देखने में बाधा ही खड़ा करता है। इसे केवल चित्र पुस्तक के रूप में ही सुन्दर कहा जा सकता है। इन्हीं की एक अन्य पुस्तक 'समंदर और मैं' एक बड़ी त्रासदी के बीच बच्चे का पानी, रेत, नाव से रिश्ते को सुन्दर व मार्मिक तरीके से अभिव्यक्त करती है। यह पुस्तक इसलिए भी रोचक है कि इसमें परिपाटियों वाली कथा कहने का आग्रह नहीं है और न ही मूल्य आरोपित करने का आग्रह। शायद यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि 'बड़े' इस पुस्तक में कम ही नजर आते हैं। यही वजह पुस्तक को अलग तरह का बनाती है। जबकि संध्या राव की अन्य पुस्तकें 'कोलबा' प्रसिद्ध लोककथा का प्रस्तुतिकरण है और अनेक बार देखी जा चुकी है लेकिन अपने डिजाइन व चित्रों की वजह से आकर्षक दिखती है।

I am a student.

मैं एक छात्रा हूँ।

ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जो कि प्रकृति को देखने, अपने आस-पास की चीजों का अवलोकन करने व सहभागिता को एक अहम रूप में सामने रखती हैं। जैसे संध्या राव (चित्र-अशोक राजगोपालन) की 'बगीचे में तूफान', लतिका नाथ राणा (फोटो-नन्दा शमशेर व जंग बहादुर राणा) की 'बाघ का बच्चा तकदीर', जीवा रघुनाथ(चित्र-नैन्सी राज) की 'मल्ली' व जीवा (चित्र-जयंति मनोकरण) की ही 'गडगड गुडुगुडु', राधिका चड्डा (चित्र-प्रिया कुरियन) की 'मुझे सोना है' अथवा कैथी की गतिविधि पुस्तक 'एक दिन प्रिया का'। इन पुस्तकों की खास बात है कि इनमें लोग आपस में चीजें एक दूसरे के साथ बांटते हैं, एक दूसरे से सीखने की कोशिश करते हैं। आस-पास की चीजों से एक रिश्ता बनाने की कोशिश करते हैं। और अगर यह रिश्ता बच्चों की नजर से बनाया जा सकता है तो किताबें और भी रोचक हो सकती हैं।

सुबीर शुक्ला (चित्र-नीना सबनानी) की 'रंग-पसंद लड़का' सुबीर शुक्ला (चित्र-रेणुका राजीव) की किताब 'राधा ने ढूंढ़ा गोला', दोनों ही किताबों को देखकर यह लगता है कि बड़े बच्चों को अवलोकन प्रक्रिया व कल्पनाशीलता के बारे में सिखाने के ढंग से ही सोचते हैं। बच्चों के साथ अन्तर्क्रियात्मक प्रक्रिया में नहीं जाते कि बच्चे कैसे अपनी समझ से अवलोकन करता है और अपने संदर्भ में उस वस्तु-जगत को अपनाता भी है। 'रंग-पसंद लड़का' ऑब्सेस कल्पनाशीलता है।

बाल साहित्य में इन दिनों तुकबन्दियों का बहुत बोल बाला है। तुकें भाषा की ही नहीं बल्कि दृश्यों की, घटनाओं की (अखबारी बाल साहित्य तो वैसे इन तीनों प्रकार की तुकों की बीमारी से ग्रसित है।) की भी दिखती हैं। सुचित्रा रामदूरे (चित्र - अशोक राजगोपालन) की 'भागा भागा मिर्च का दाना', 'देखो चांद' का टेक्सट, नन्दिनी नायर (चित्र-विश्व ज्योति घोष) की 'प्रणव की तस्वीर' (यह पुस्तक तो किसी खराब चुटकुले की तरह है।), 'राधा ने ढूंढ़ा गोला' ऐसी ही किताबें हैं। चित्रों व प्रस्तुति की पैकिंग से ही पूरी किताब बेहतरीन नहीं हो जाती। और इन तमाम तरह की पुस्तकों का इतना कीमती होना तार्किक नहीं लगता।

3

अब यह एक अध्ययन का विषय है कि निजी स्कूलों की बेशुमार बढ़ोतरी और उनकी 'बेहतर शिक्षा' के दावे, धन का अनेक स्रोतों से अविकल बहना व अनौपचारिक शिक्षा की पैरवी करने वालों द्वारा नए-नए प्रयोग करना-यह सभी किस तरह के दबाव साहित्यकारों के सामने रखते हैं ? अब यह मानना तो बड़ी भूल होगी कि बाल साहित्य स्कूली यांत्रिक 'शिक्षा-पुस्तकों' का एक रचनात्मक सहभागी उपक्रम है। यह भूल अक्सर साहित्यकार करते हैं। और अपने आप को अध्यापक व अपनी पुस्तकों को पाठ्यक्रम का हिस्सा ही समझते हैं कि बच्चे को कैसे आदर्श बच्चा बनाएं।

यह विभाजक रेखा बनाना बहुत जटिल बहस का विषय है कि कौनसा साहित्य बच्चों के लिए है और कौनसा बड़ों के लिए। अगर प्रश्न सिर्फ शिक्षाक्रमीय उद्देश्यों तक ही सीमित न हो तो। साहित्य में

वस्तुपरकता के साथ-साथ आत्मपरकता की भी उतनी ही मांग होती है। जब आप ऐसे साहित्य जिसे कि बच्चे भी पढ़ेंगे के बारे में सोचते हैं तो यह और भी कठिन हो जाता है। इसीलिए बच्चों के लिए लिखा भी कम ही जाता है। बच्चों के लिए या तो एक उपदेशपरक-देशभक्ति का साहित्य होता है या वो जो दुनिया को बेहद 'गुली-गुली', सब कुछ 'अच्छा-अच्छा' की दृष्टि से देखा गया साहित्य।

तूलिका की कुछ पुस्तकों की खास बात जिस पर कि ज्यादा ध्यान भी दिया गया है- इन सब में चित्र व प्रस्तुति है। अन्यथा कहानियों में नयापन नहीं है। कहानी सरंचना के स्तर पर लोक कथाओं के फॉर्म का ही बार-बार प्रयोग किया गया है। कोई घटना घटती है तो उसको अलग-अलग तरह से बार-बार दोहराकर रोचक बनाने की कोशिशें की गई हैं। कहानियों की किताबें ऐसी होने का कारण यह भी है कि ज्यादातर लेखक पशु-पक्षियों के माध्यम से सहभागिता और मूल्यों को स्थापित करने की जल्दबाजी के दबाव से बाहर नहीं निकलते हैं। यह मानकर चला जाता है कि बच्चों को इस तरह की कथाएं अच्छी लगती हैं। इसी वजह से बच्चों के साहित्य में यह परिपाटी चल पड़ी है। इस तरह की अनेक कहानियों से हिन्दी के पाठक एनबीटी व सीबीटी की किताबों से परिचित हैं। बाल साहित्य में नयापन व विविधता का अभाव दरअसल अनायास नहीं है। यह बच्चों की दुनिया को बड़ों द्वारा 'देखने' का भी प्रश्न है।

और हम देखते ही हैं कि बच्चों के साथ मिलकर बनाए गए साहित्य का कितना अभाव है। बच्चों के लिए लिखे जा रहे साहित्य के लेखन में बच्चे ही शामिल नहीं हैं, जबकि इस तरह के प्रयोग हो सकते हैं। अधिकांश साहित्य इन दिनों, हम जो पढ़ते हैं वह एकरसता ही प्रदान करता है। कोई लेखक किसी तरह का जोखिम नहीं लेना चाहता। यह एक आदर्श समाजीकरण की प्रक्रिया का दबाव भी कहा जा सकता है कि हम बच्चों की दुनिया को एक आदर्श दुनिया के रूप में ही देखते हैं। पुस्तकों के विषय चयन में यह साफ दिखाई पड़ता है। जिनमें हमारी मान्यताएं दिखती हैं कि बच्चों के लिए क्या ठीक है या क्या गलत, जो कि दुनिया के प्रति हमारी समझ से पैदा होती है। जिसमें बचपन पीछे छूट चुका होता है। लेखक बच्चों को अपनी समझ व अपनी गति से सिखाना चाहते हैं कि क्या देखना चाहिए और कैसे ? क्या सुन्दर है ? क्या चुनना चाहिए ? इन आग्रहों की वजह से किताबें सतही, बनावटी व शिक्षाक्रमीय पाठ्यचर्या का हिस्सा लगती हैं। कोई पुस्तक ऐसी नहीं है जिसमें बच्चा किसी दुविधा में हो या सीखने की प्रक्रिया में उसे संघर्ष करना पड़ रहा हो। मुझे लगता है कि बच्चों के लिए लिखने वाले लेखक अगर अपने बचपन के किस्सों, अपने अनुभवों, दुनिया की चीजों के साथ सीखते हुए सुख-दुख को भी कहें तो रोचक सामग्री हो सकती है। अन्यथा हो यह रहा है कि किताबों में वास्तविक बच्चा है ही नहीं, बच्चा है तो वो बच्चा है जिसकी आदर्श छवि इन लेखकों के दिमाग में है। बच्चों को अनेक प्रकार की चीजें सीखने में असफलताओं का सामना करना पड़ता है। सुख-दुख, उत्साह-निराशा के उतार-चढ़ाव उनकी जिन्दगी में आते हैं। लेकिन बच्चों के जीवन के ये शेड्स इन पुस्तकों से नदारद हैं। क्या इन लेखकों को बच्चों की ऊब, निराशा, बड़ों के अनेक व्यवहारों के प्रति घृणा, स्कूल का बोझ, प्रतिस्पर्धा की चूहा दौड़, लगातार खेलते रहने का उत्साह, साईकिल से गिरकर चोट लगना, तरह-तरह की फंतासिया करना- क्या नहीं दिखता है?

बच्चों के कौतुहल-जिज्ञासाओं की दुनिया भी भिन्न होती है। दुनिया की तमाम चीजों के बारे में प्रश्न, हिंसा के बारे में प्रश्न, माता-पिता, समाज के रिश्तों के बारे में प्रश्न, यौन अंगों के बारे में प्रश्न, धन-दौलत के बारे में प्रश्न, अच्छा क्या ? बुरा क्या ? के बारे में प्रश्न। लेखक इन चीजों पर काम करने से इसलिए बचते हैं कि इससे बड़ों की बनाई दुनिया प्रश्नित होती है। जैसे कि अगर कोई बच्चा स्कूल की घुटन व बोरियत के बारे में अपनी बातें कहना चाहेगा तो हमारा प्रयास रहेगा कि वो उसी व्यवस्था में फिट होने की कोशिश करे न कि उससे अलग जाने की। चूंकि लेखक स्वयं अपने चारों तरफ की व्यवस्थाओं से घिरा है और वह उनको बार-बार प्रश्नित नहीं करता है तो उसकी यह मानसिकता बच्चों के साहित्य में रिफ्लैक्ट होगी ही। और बच्चों के लिए लिखे जा रहे साहित्य की यही समस्या है।

क्या आप अपने बच्चों के लिए ऐसा 'साहित्य' चाहेंगे- जिसमें वे आपसे, आपके दिए हुए नहीं- बल्कि आपके साथ जीवन जीते हुए अपने मन के प्रश्न, विचार, अनुभव, सपने, दुख-सुख, कल्पनाएं, इच्छाएं व्यक्त न करें ?

4

'मैं कौन हूं' किताब में एक पृष्ठ पर लड़का-लड़की अपनी पहचान छात्र व छात्रा के रूप में बताते हैं और यह अनायास नहीं है। क्योंकि इन पुस्तकों के पाठक वे शहरी मध्यवर्गीय लकदक वेशभूषा में भारी बैग लिए स्कूल जाते बच्चे ही हैं। यह अंतर्निहित ही है कि पाठ्यपुस्तकों के बोझ से निकलने व स्कूली दुनिया से बाहर झांकने की यह पुस्तकें कोशिश ही नहीं करती हैं। **'बचपन के' या बड़ों के बीच 'बच्चों की दुनिया' के 'ट्रेप' को समझने की नहीं।** पाठ्य पुस्तकों-स्कूली शिक्षा की नीरसता व एकसेपन के पूरक में इन पुस्तकों को देखें तो सामान्यतः ये हमें उपयोगी लगती हैं। लेकिन समस्या मात्र यह नहीं है। समस्या औपचारिक शैक्षणिक ढांचे या अनौपचारिक प्रयासों में निहित समाजीकरण के प्रति दृष्टि की भी है।

जैसे कि प्रसिद्ध लेखिका महाश्वेता देवी (चित्र-कन्यिका किणी) की पुस्तक 'क्यू-क्यूं लड़की' के मूल आग्रह को समझने की आवश्कता

है। कथा की लड़की मोयना महाश्वेता देवी की प्रोजेक्टेड चरित्र है। लड़की खूब सवाल पूछती है। शिक्षिका सवालों के हल किताब में खोजने को प्रेरित करती है, समिति की शाला में जाने को प्रेरित करती है (सीधी-साधी एक एनजीओ संस्कृति)। गांव की लड़की उन सवालों के हल पाती है, और 18 वर्ष की उम्र में उसी समिति की शिक्षिका बन जाती है। यह सारा का सारा एक बनावटी उपक्रम लगता है। 'क्यूं-क्यूं लड़की' में मोयना खूब सवाल पूछती है। सवाल पूछना किसी बच्चे-बड़े का गुण होना चाहिए इससे सभी की सहमत होंगे, लेकिन सवाल यह है कि क्या उनके जवाब पाने की प्रक्रिया एक सीधी-सपाट हो सकती है ? यह किताब सीधी-सपाट इसलिए है कि वह बच्चों को सवाल पूछना सिखाने के साथ-साथ मात्र स्कूल पहुंचाने पर ही ध्यान देती है। साक्षरता मिशन के ऐजेंड़े की मानिंद। जबकि जवाब पाना एक लम्बी और रोचक प्रक्रिया है। उसका आनन्द भी खोजने, चिन्तन करने, करके देखने, विश्लेषण करने, तुलनाएं करने, चर्चाएं करने, निष्कर्ष निकालकर पुनर्विचार करने में है न कि मात्र पाठ्यपुस्तकों के नीरस सवाल जवाब के रूप में। यह पुस्तक एक सवाल और उसके जवाबों के विभिन्न स्रोतों से गुजरने की प्रक्रिया होती तो भी यह दिलचस्प हो सकती थी। जबकि दूसरी तरफ स्वीडिश लेखिका ऐस्ट्रिड लिंडग्रन की किताब पिप्पी लंबेमोजे की नायिका है (हालांकि पिप्पी अपने आप में एक अलग लेख का विषय है)।

5

यहां पर तीन किताबों की चर्चा भी आवश्यक है। पहली जाई विटेकर (चित्र- विद्या नटराजन) की 'काली और धामिन सांप', यह किताब काली जो कि कबीलाई परिवार से है। बच्चों के बीच स्कूल में अपनी उपेक्षा से परेशान है। लेकिन उसे एक अवसर कक्षा का नायक बना देता है, क्योंकि कक्षा में आए सांप को सावधानीपूर्वक पकड़कर, डरे हुए बच्चों व शिक्षक को चौंका देता है, राहत देता है।

काली की कहानी वास्तविक भी हो सकती है और उपेक्षित बच्चे के भीतर की एक क्षमता को प्रदर्शित करती हुई अन्य बच्चों के बीच उसे आदर-सम्मान दिलाने की कोशिश करती काल्पनिक भी।

संशय मुझे मंशा पर है। इस कहानी में क्या होता है? अगर काली सांप न पकड़ता तो क्या होता ? वह प्रारंभ में स्कूल जाते हुए लगभग आतंकित रहता है। वहां से कथा अन्य विवरणों का आकार भी ले सकती थी। लेकिन काली के सांप पकड़ने के करिश्माई अंदाज से अपनी क्षमता को मध्यवर्गीय बच्चों के सामने साबित करना ही पड़ता है। प्रश्न यह है कि जो यह साबित न करे उसका क्या? क्या काली उपेक्षित ही रहेगा? प्रश्न वही वयस्कों की दृष्टि का है। काली जो स्कूल जाते हुए कहता है **'जितना ही धीमे क्यों न चलो स्कूल तो अंत में आ ही जाता है'**, मुझे लगता है असली कथा अपमान से उपजी इस वेदना में छिपी है जो कि कबीलाई काली की जिंदगी से निकलती है। न कि मध्यवर्गीय बच्चों के बीच कबीलाई-आदिवासी बच्चों के प्रति सहद्यता जगाने की कोशिशों में।

आप जानते हैं कि अनेक दलित लेखकों ने अपने बचपन व स्कूलों में बिताए दिनों की बेबसी, उपेक्षा व झेले गए अपमानों को लिखा है। क्या यह कहना अतिश्योक्ति होगी कि बच्चों के लिए लिखे जाने वाला इस तरह का साहित्य हमारे अपराध बोध की उपज होता है। अब यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि क्या काली अपनी पहचान 'मैं कौन हूं' किताब के छात्र बच्चे की तरह 'मैं छात्र हूं' के रूप में बताना चाहेगा ?

एक अन्य पुस्तक इन्दिरा मुखर्जी (चित्र ए.वी. इलंगो) की कौन बनेगा निंगथऊ? मणिपुरी लोक कथा पर आधारित है। यह एक बेहतर किताब है। एक राजा पिता-माता जिन्हें कि अपना उत्तराधिकारी चुनना है और आग्रह नहीं है कि वह बेटा ही हो, अंत में तीन बेटों की बजाय बेटी को ही वे अपना उत्तराधिकारी चुनते हैं। क्योंकि बेटी के मन में पशु-पक्षियों, पेड़ों के लिए संवेदनशीलता है। पुस्तक सुन्दर ढंग से प्रकृति व मनुष्य के रिश्तों को कहती है। वैसे अनेक ऐसी लोक कथाएं हैं जिनमें कि इस पुस्तक में बेटी की भूमिका को राजा के सबसे छोटे बेटे निभाते हुए दिखाई देते हैं। एक पुस्तक कमला भसीन (चित्र - बिन्दिया थापर) की 'मालू-भालू' भी मां-बेटी के रिश्ते को आकर्षक ढंग से कहती है। तीसरी अन्य किताब नीना सबनानी की 'कुछ नहीं के बारे में सब कुछ' यह एक दिलचस्प कल्पनाशील पुस्तक है, जो कि शून्य (जीरो) की उत्पत्ति को कथा में ढाल कर रोचक तरह से प्रस्तुत करती है। ◆

(इस टिप्पणी को शक्ल देने में इन पुस्तकों के बारे में रवि एवं प्रभात से हुई बातचीत से मदद मिली।)